E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2021; 3(2): 114-117
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 19-05-2021
Accepted: 30-06-2021

अनिल कुमार
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविधालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
अनिल कुमार
शोधार्थी,राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविधालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

पारिस्थितिकी संरक्षण के संदर्भ में उपभोक्तावाद की गांधीवादी आलोचना

अनिल कुमार

सारांश
उपभोक्तावाद में जीवन को भी वस्तु की तरह अधिकतम उपभोग योग्य माना जाने लगा है। उपभोग प्रधान आधुनिक संस्कृति मनुष्य के लालच को बढ़ाती है और पारिस्थितिकी क्षरण का कारण बनती है। गांधी के अनुसार ईच्छाओं के त्याग द्वारा स्वार्थ से मुक्ति प्राप्त होती है और अतंतः मनुष्य शांति की स्थिति को प्राप्त करता है। अस्तेय, अपरिग्रह तथा सादा जीवन प्रणाली उपभोक्तावादी संस्कृति के उपाय स्वरूप देखे जा सकते है। व्यक्ति को स्थितिप्रज्ञ होकर अपनी इच्छाओं पर लगाम लगानी चाहिए ताकि अगली पीढ़ि को एक स्वस्थ पर्यावरण की विरासत सौंपी जा सके। गांधी के अनुसार सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है, भोग में नहीं।

मूल शब्दः उपभोक्तावादी संस्कृति, विलासिता, आधुनिक सभ्यता, पारिस्थितिकी क्षरण, अस्तेय, अपरिग्रह, सादा जीवन शैली, संसाधन–शोषण, गांधीय दृष्टिकोण

प्रस्तावना
पर्यावरण क्षरण का प्रभाव विश्व स्तर पर अच्छी तरह से महसूस किया जा रहा है। गांधी के अनुसार जीवन शैली में यह परिवर्तन आधुनिक सभ्यता की स्वीकृति के कारण है जिसने उपभोक्तावाद को जन्म दिया है। उपभोक्तावाद, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने वाली भारी मशीनरी की मदद से बड़े पैमाने पर उत्पादन की मांग करता है। इस प्रक्रिया में यह विशाल बेकाबू कचरा पैदा करता है। इससे पर्यावरण खराब होता है।
उपभोक्तावाद का सिद्धांत ''प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों तरह के उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग और अत्यधिक खपत'' पर आधारित एक वाद है। यह उपलब्ध संसाधनों के संरक्षण या क्रमिक उपयोग के खिलाफ एक सनक है। हम जानते हैं कि हवा, पानी, मिट्टी, खनिज जैसे प्राकृतिक संसाधनों की वर्तमान स्थिति डराने वाली है। उन्हें आने वाले समय के लिए नहीं रहना है। लेकिन उपभोक्तावाद में इस कठोर वास्तविकता को ध्यान में नहीं रखा जाता है। संरक्षण के कार्य को पर्यावरण की कठोर वास्तविकताओं पर अधिक से अधिक लगाम लगाने की वासना और लालच के कारण नजरअंदाज कर दिया जाता है। दीर्घकाल में यह लापरवाही इस धरती पर मनुष्य के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, और पर्यावरणविद हमें खनिजों के तेजी से घटते भंडार, जंगलों, वनस्पतियों और जीवों के घटते क्षेत्रों, वैश्विक तापन, ओजोन परत की कमी और अन्य खतरों के खिलाफ चेतावनी दे रहे हैं। लेकिन उनकी चेतावनियों के बावजूद, प्राकृतिक संसाधनों का बड़े पैमाने पर उपयोग जारी है, यह मानवता के लिए एक बड़ी दुर्दशा है।

उपभोक्तावाद का सिद्धांत व अर्थ
उपभोक्तावाद का पहला सिद्धांत धन, मौज–मस्ती, भौतिक सुख और विलासिता के रूप में अधिक से अधिक सब कुछ पाने की मानवीय वासना है। दूसरे शब्दों में उपभोक्तावाद मानवीय आवश्यकताओं के गुणन पर आधारित है। उपभोक्तावाद में, वास्तविक जरूरतों को कृत्रिम से अलग नहीं किया जाता बल्कि प्रत्येक नई आवश्यकता को किसी भी कीमत पर संतुष्ट किया जाता है। उपभोक्तावाद का दूसरा सिद्धांत केवल जरूरतों को पूरा करना नहीं है बल्कि एक सामाजिक प्रस्थिति है जो उपभोक्ता की जीवन शैली को दर्शाता है। उपभोक्तावादी समाज सफलता उन्मुख है। यह अच्छे–बूरे किसी भी तरीके द्वारा हासिल किया जाना है। उपभोक्तावाद का अर्थ है छवियों और चीजों का प्रसार। तीसरा, उपभोक्तावाद एक प्रमुख प्रवृत्ति तभी बन सकता है जब वह पर्याप्त अवकाश, समय और क्रय क्षमता वाला एक नया मध्यम वर्ग बनाने में सफल हो। चौथा, उपभोक्तावाद का लोकाचार समतावादी प्रतीत होता है। यह कुलीन संस्कृति और गैर–कुलीन संस्कृति के बीच भेद को नकारता है।

यह एक समान जीवन शैली और अपेक्षाएं उत्पन्न करता है ताकि हर कोई इसमें भाग ले सके। फिर भी, उपभोक्तावाद का यह तर्क ही व्यक्ति को हमेशा के लिए चिंतित और असुरक्षित बना देता है जो एक तरीके से जीवन को भी 'प्रयोग करने और फेंक देने' के समान है।[1]

वह वह चरण है, जहां वास्तविक और असत्य के बीच का अंतर धुंधला हो जाता है। यहीं पर हम गांधीवादी आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षाओं की वैधता पाते हैं जिनका अत्यधिक महत्व है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन इस धरती पर आने वाली पीढ़ी को संकट में डालेगा। गांधी के उस काल में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ रहा था। उन्होंने सोचा कि अनियोजित और अक्षम प्रबंधन, मानवता के लालच के कारण पृथ्वी के पर्यावरण को नुकसान पहुंचाएगा। उनके मन में था कि संसाधनों का इष्टतम उपयोग पृथ्वी के पर्यावरण को बदल देगा।

मानव की जरूरतें बढ़ रही हैं और लगातार बढ़ती ही जा रही हैं।[2] इसने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते हुए भारी मशीनरी की मदद से बड़े पैमाने पर उत्पादन में वृद्धि की है। इस प्रक्रिया में यह विशाल बेकाबू कचरा पैदा करती है।[3] यह पर्यावरण को खराब करती हैं। गांधी ने मनुष्य को इस स्थिति के प्रति आगाह किया। गांधी ने कहा, ''मन एक बेचैन पक्षी है, जितना अधिक वह चाहता है उतना ही वह असंतुष्ट रहता है। जितना अधिक हम अपने जुनून को शामिल करते हैं, उतना ही यह बेलगाम हो जाता है।[4]

गांधी ने इस समस्या के समाधान के रूप में, स्वेच्छा से हमारी इच्छाओं को वास्तविक स्तर तक कम करने की वकालत की। एक प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री प्रोफेसर जेके मेहता ने जरूरतों को खत्म करने की एक प्रक्रिया का सुझाव दिया है। उनके अनुसार चाहतों को सिर्फ चाहतों से ही मारा जा सकता है। इसलिए, कमजोर चाहतों को मारने के लिए मजबूत चाहतों को नियोजित किया जाना चाहिए। और जब मानव मन में इस तरह की लड़ाई लड़ी जाती है, और हीन इच्छाएँ अंततः मर जाती हैं और व्यक्ति के पास केवल श्रेष्ठ इच्छाएँ रह जाती हैं। उन्हें जीवन काल में, अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए नियोजित किया जा सकता है। इस तरह, हम अंततः एक ऐसे चरण तक पहुँच सकते हैं जिसमें केवल सबसे श्रेष्ठ (दूसरे शब्दों में सबसे वास्तविक) चाहतें संतुष्ट करने के लिए बच जाती हैं।[5]

गांधी बताते हैं कि मनुष्य को अपने भोग की सीमा निर्धारित करनी चाहिए जो उसकी आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मदद करेगी। महात्मा गांधी अनियंत्रित औद्योगीकरण और आधुनिक सभ्यता के कट्टर आलोचक थे। उन्होंने अपनी समकालीन पश्चिमी सभ्यता को देखा जो लोगों को अमानवीय बनाती है। व्यक्ति और जीवन की सभी विलासिता प्राप्त करने के लिए पैसों से शरीर के लिए आराम के साधन जुटाती है। परन्तु ऐसा करने में वह बुरी तरह विफल हो जाता है। यह मनुष्य की अतृप्त लोभवृति है जो भौतिक सामग्री प्राप्त करना चाहती है । गांधी वास्तव में हमें उपभोक्तावाद और उससे संबंधित परिणामों के खिलाफ चेतावनी दे रहे थे जिनका हम आज सामना कर रहे हैं।

तृष्णा और वासना मानव आत्मा के पीड़ादायक तत्व हैं। इच्छा को संतुष्ट करने की लालसा, अतृप्त ही रहती है। उन्होंने मानव इंद्रियों को नियंत्रित करने के लिए सुझाव दिया। मानव इंद्रियों के प्रति झुकाव, इच्छा से उत्पन्न होता है, इच्छा को संतुष्ट करने की वासना अतृप्त हो जाती है। यदि इच्छा विफल हो जाती है, तो व्यक्ति क्रोधित और पागल हो जाता है। वह इस प्रक्रिया में, अपनी याददाश्त खो देता है, अव्यवस्थित तरीके से व्यवहार करता है और एक अपमानजनक अंत प्राप्त करता है।[6]

मनुष्य की इन्द्रियाँ जब इच्छा से चलती हैं, तो वह बिना पतवार के जहाज के समान होता है, जो आंधी की दया पर होता है और चट्टानों पर टुकड़े–टुकड़े हो जाता है। इस प्रकार, गांधी के अनुसार, जो सभी इच्छाओं को त्याग देता है, वह गर्व और स्वार्थ से मुक्त होता है और एक अलग व्यवहार करता है और शांति पाता है।[7]

अस्तेय गांधीवादी दर्शन का महत्वपूर्ण अंग रहा है। अस्तेय का अर्थ है अपनी आवश्यकता से अधिक पाने से बचना। उन्होंने कहा, आवश्यकता से अधिक संपत्ति रखना चोरी समान है और इसलिए हिंसा का कारण है। यह आधुनिक समाज में सच है, जब हम शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में भूमि के सौदे में संघर्ष के उदाहरण देखते हैं। इस प्रकार, अस्तेय के सिद्धांत में दूसरों के बारे में सोचने और पर्यावरण के दुरुपयोग से बचने के बारे में चिंताएँ हैं।

वस्तुओं को संचित करने की प्रवृत्ति जीवन के बाहरी सामानों का संग्रह करने की रुग्ण इच्छा में आत्मा को जकड़ कर उसे पतित कर देती है। गांधी ने इसे अस्तेय (गैर–चोरी) कहा, अस्तेय का मतलब केवल चोरी न करना नहीं है। बल्कि चोरी का मतलब है ऐसी कोई भी चीज रखना या लेना, जिसकी जरूरत नहीं है। चोरी हिंसा युक्त होती है, इसका अर्थ है पृथ्वी की पारिस्थितिक संपत्ति का अवैध उपयोग। हम हमेशा अपनी वास्तविक जरूरतों से अवगत नहीं होते हैं, और हम में से अधिकांश अपनी इच्छाओं को अनुचित तरीके से बढ़ाते हैं और इस तरह अनजाने में खुद को चोर बना लेते हैं। जो कोई चोरी न करने के इस नियम का पालन करता है, वह अपनी स्वयं की आवश्यकताओं में उत्तरोत्तर कमी लाता है। इस दुनिया में विकट गरीबी अस्तेय के सिद्धांत के उल्लंघन से उत्पन्न हुई है।

अस्तेय के समान, अपरिग्रह का अर्थ है कि किसी को ऐसी कोई भी चीज जमा नहीं करनी चाहिए जिसकी हमें आज आवश्यकता नहीं है। आपके पास जितना कम है, आप जितना कम चाहते हैं, आप उतने ही बेहतर हैं। यह आपके इस जीवन का आनंद लेने के लिए नहीं है बल्कि अपने साथी प्राणियों के आनंद के लिए है। यह वह सेवा है जिसके लिए आप अपने आप को, शरीर, आत्मा और मन को समर्पित करते हैं।[8] जब आप अपने पास मौजूद हर चीज से खुद को बेदखल कर देते हैं, तो आपके पास वास्तव में दुनिया के सभी खजाने होते हैं। दूसरे शब्दों में, आपको वास्तव में वह सब मिलता है जो वास्तव में आपके लिए आवश्यक है। मनुष्य ने अधिक से अधिक की अपनी निरंतर असंतुष्ट इच्छा के कारण इस ग्रह को नरक बना दिया है। बढ़ता हुआ पारिस्थितिक असंतुलन, पर्यावरण का ह्रास, लुप्त होती वनस्पतियां और जीव–जंतु, अबाधित जनसंख्या विस्फोट और बिगड़ते मानवीय मूल्य, ये सभी कथित आधुनिक बुद्धिमान मानव के लालच का परिणाम हैं।[9]

मानव प्रकृति पर अधिकार करने की इच्छा रखता है, यह मनुष्य को प्रकृति से दूर कर देगा। इसने मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच असंतुलन पैदा कर दिया है। प्रोफेसर ई.एफ. शूमाकर कहते हैं, ''संसाधनों का संकट, पारिस्थितिकी का संकट और प्रकृति से अलगाव और भटकाव का बहुत गहरा मानवीय संकट दुनिया को घेर लेगा'' ये संकट इसलिए हुआ क्योंकि हर शरीर अधिक से अधिक पाने के लिए कड़ी मेहनत करता है।[10]

उन्होंने आगे कहा कि जीवन का एक दृष्टिकोण धन के माध्यम से मन की ईच्छाओं की तृप्ति चाहता है। भौतिकवाद इस दुनिया में उपयुक्त नहीं बैठता क्योंकि इसमें असीमितता का सिद्धांत हैं। लेकिन जिस वातावरण में इसे रखा गया है वह सख्ती से सीमित है। पर्यावरण हमें यह बताने की कोशिश कर रहा है कि कुछ तनाव अत्यधिक बढ़ते जा रहे हैं। जैसे कुछ समस्याओं का समाधान हो रहा है तो नई समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। नई समस्याएं आकस्मिक विफलता के परिणाम नहीं हैं बल्कि तकनीकी सफलता के परिणाम हैं। इस तरह, प्रोफेसर शूमाकर और कई अन्य प्रौद्योगिकीविदों और पारिस्थितिकीविदों के निष्कर्षों

को लगभग पचास साल पहले गांधी द्वारा स्पष्ट रूप से बता दिया गया था। उपभोक्तावाद बड़े पैमाने पर उत्पादन, स्वचालित भारी मशीनरी का उपयोग, बड़ी मात्रा में कच्चे माल की खरीद, अत्यधिक ऊर्जा का उपयोग, थोक उत्पादन, परिवहन, भंडारण और भारी अपशिष्ट के निर्माण से पर्यावरण का क्षरण होता है। यह बेरोजगारी, गरीबी का कारण बनता है, श्रम को विस्थापित करता है और चोरी जैसे अपराध को जन्म दे सकता है।[11]

प्रोफेसर ई.एफ. शूमाकर दुनिया को तीन संकटों की समय पर चेतावनी देते हैं जो दुनिया को घेर रही हैं। वे हैंः संसाधनों का संकट, पारिस्थितिकी का संकट और अलगाव और भटकाव का बहुत गहरा मानवीय संकट। ईएफ शूमाकर का कहना है कि यह संकट इसलिए आया क्योंकि हर शरीर अधिक से अधिक पाने के लिए कड़ी भागदौड़ करता है।

गांधी, असीमित संख्या में चाहतों को बनाने और उन्हें एक भ्रम और जाल के रूप में संतुष्ट करने के आदर्श को सही नहीं मानते थे ''उनके अनुसार, शारीरिक जरूरतों के लिए असीमित वासना ''शारीरिक और बौद्धिक कामुकता'' में पतित हो जाती है। उन्होंने इच्छा से घृणा की और उसे ''पाश्विक भूख'' कहा। एक बार, उन्होंने कहा, ''यदि आधुनिक सभ्यता इस सब के लिए खड़ी है, और मैंने इसे ऐसा करने के लिए समझा है, तो मैं इसे शैतानी कहता हूं।''[12] गांधी ने माना कि पश्चिमी भौतिकवाद की एक सीमा है। भौतिक भोग और सिद्धि हमें परम शांति और आनंद न तो देते हैं और न ही दे सकते हैं। एक क्षण ऐसा आता है जब मनुष्य उन्नति और उपभोग–संस्कृति से व्याकुल हो जाता है। फिर नैतिक ज्ञान की आवश्यकता आती है जो पीड़ित आत्मा को सांत्वना देती है। यह गांधी ही थे जो भविष्यवक्ता और पथ–प्रदर्शक साबित हुए। पश्चिमी दुनिया में आज हम धार्मिकता, अध्यात्म और ध्यान की ओर झुकाव पाते हैं। शांति और मानसिक शांति पाने के लिए दुनिया के तमाम सरोकारों से लोग भारत आते हैं। यह दर्शाता है कि भौतिकवाद और उपभोक्तावाद की अपनी सीमाएँ हैं।[13]

गांधीजी सादा जीवन और उच्च विचार के प्रति आस्थावान थे। मनुष्य आदर्शों से गिर जाता है, जब उसकी चाहत कई गुना बढ़ जाती है। मनुष्य का सुख वास्तव में संतोष में है। असन्तोष मनुष्य को उसकी वासनाओं का दास बना देता है। एक बार गांधी ने कहा था, ''आपके पास जितना कम है, आप जितना कम चाहते हैं, आप उतने ही अच्छे हैं। सुखी जीवन का रहस्य त्याग में है। त्याग ही जीवन है। भोग मृत्यु को मंत्रमुग्ध करता है।''[14]

गांधीवादी समाधान

1. गांधी जी ने कहा था कि मन बेचैन पंछी की तरह है। जितना अधिक वह चाहता है उतना अधिक मिलता है और फिर भी वह असंतुष्ट रहेगा। जितना अधिक हम अपने जुनून को लिप्त करते हैं, वे उतने ही बेलगाम होते जाते हैं। इस समस्या का गांधी का समाधान स्वेच्छा से हमारी इच्छाओं को वास्तविक स्तर तक कम करना है।[15] गांधी ने वकालत की ''हमें अपने भोग की सीमा निर्धारित करनी चाहिए। हमारे पूर्वज जानते थे कि अगर हम ऐसी चीजों के लिए अपना दिल लगाते हैं तो हम गुलाम होंगे और अपने नैतिक ताने–बाने को खो देंगे। उन्होंने महसूस किया कि हमारा असली सुख और स्वास्थ्य हाथ और पैरों के उचित उपयोग में निहित है।'' यदि इसका पालन किया जाए तो बहुत सारे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण संभव हो सकता है जो आने वाली पीढ़ियों के लिए पर्याप्त होंगे। गांधीजी अनियंत्रित औद्योगीकरण और आधुनिक सभ्यता के कट्टर आलोचक थे जो व्यक्ति को अमानवीय बनाती है और शरीर के आराम एवं जीवन हेतु समस्त प्रकार की विलासिता को प्राप्त करने, जिसे पैसा खरीद सकता है, की प्रवृति बढ़ाती है। यह मिट्टी की सामग्री के लिए मनुष्य के अंतहीन लालच के कारण है। गांधी जी ने कहा था कि सभ्यता की असली परीक्षा यह है कि इसमें रहने वाले लोग शारीरिक कल्याण को जीवन का लक्ष्य बना लें। गांधी ने छात्रों से जानबूझकर इस ज्ञान को प्राप्त करके अपनी इच्छाओं को कम करने की अपील की।[16]

2. तृष्णा और वासना जो मानव आत्मा के पीड़ादायक तत्व हैं। व्यक्ति जब अपनी तृष्णाओं और इच्छाओं का त्याग कर देता है तो उसके अपने भीतर से संतुष्टि को 'समस्थिति या स्थितिप्रज्ञ' कहा जाता है। उन्होंने ऐसे व्यक्ति को ''विपत्ति में अविचलित'' और सांसारिक इच्छा से अप्रभावित कहा। इस प्रकार गांधीजी के अनुसार ''जो सभी इच्छाओं को त्याग देता है वह गर्व और स्वार्थ से मुक्त होता है और अपने इस व्यवहार से शांति पाता है।''[17]

3. वस्तुओं को संचित करने की प्रवृत्ति आत्मा को जकड़ लेती है और जीवन के बाहरी सामानों के भण्डारण की रुग्ण इच्छा में पतित हो जाती है। यह एकाधिकार को जन्म देती है। संचय निंदनीय है क्योंकि सभी के द्वारा इसका अभ्यास करना संभव नहीं है। गांधीजी ने प्रस्ताव दिया कि प्रकृति हमारी दिन–प्रतिदिन की जरूरतों के लिए पर्याप्त उत्पादन करती है और यदि केवल हर कोई अपने लिए पर्याप्त लेता है और कुछ नहीं, तो इस दुनिया में कोई कंगाली नहीं होगी। यह तब अहिंसा के शासन समान होता है।[18] गांधी ने कहा, ''जब तक लाखों लोगों को कपड़े नहीं पहनाए जाते और बेहतर भोजन नहीं दिया जाता, तब तक हमें किसी भी चीज पर कोई एकाधिकार नहीं है। इसलिए, हमें अपनी जरूरतों को समायोजित करना होगा और यहां तक कि लाखों लोगों को खिलाने के लिए स्वैच्छिक भुखमरी से गुजरना होगा। मनुष्य ने संचय पर अपने जोर के कारण इस ग्रह को नर्क बना दिया। इससे बढ़ते पारिस्थितिक असंतुलन, पर्यावरणीय क्षरण, लुप्त होती वनस्पति और जीव, अबाधित जनसंख्या विस्फोट और बिगड़ते मानवीय मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। यह सभी आधुनिक मानव के लालच का परिणाम हैं। इसके अलावा, गांधीजी के अनुसार आवश्यकता से अधिक जमा करना एक तरह की चोरी है। अस्तेय और अपरिग्रह की अवधारणा को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए सख्ती से अपनाया जाना चाहिए। आपके पास जितना कम है, आप जितना कम चाहते हैं, आप उतने ही अच्छे हैं। यह आपके इस जीवन का आनंद लेने के लिए नहीं है बल्कि अपने साथी प्राणियों के आनंद के लिए है।[19]

4. मनुष्य प्रकृति पर हावी है। यह मनुष्य को प्रकृति से दूर कर देगा। गांधी ने समझाया ''अलगाव के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का शोषण किया जाता है। उनका विचार था कि मनुष्य जितना अधिक प्रकृति पर हावी होगा, वह उतना ही अधिक प्रकृति से विमुख होगा। लेकिन प्रकृति से मनुष्य के अलगाव ने हिंसा का मार्ग प्रशस्त किया। उसका सच्चा स्व वह है जिसे मनुष्य अहिंसा के मार्ग पर चलकर सत्य की खोज के माध्यम से खोज सकता है। मनुष्य को पता होना चाहिए कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और अनंत नहीं हैं। इस सिद्धांत की सबसे अच्छी सच्चाई यह है कि प्रकृति हमारी दैनिक आवश्यकता के लिए पर्याप्त प्रदान करती है परन्तु लालच के लिए नहीं।[20] गांधी के पास मनुष्य के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू के बारे में उतना ही पूरा दृष्टिकोण है जितना कि उसकी आर्थिक आवश्यकता का है। उन्होनें सलाह दी कि मनुष्य को स्वयं को प्रकृति के साथ समायोजित करना चाहिए न कि इसके विपरीत, इससे मनुष्य अपने और अपने पर्यावरण के बीच असंतुलन पैदा नहीं होने देगा। गांधीवादी समाधान यह है कि मानव प्रकृति से अलग नहीं बल्कि उसका एक हिस्सा या तत्व होना चाहिए।

औद्योगीकरण नैतिक और मानवीय मूल्यों के बहिष्कार के लिए उपभोक्तावाद पर जोर देता है। और उपभोक्तावाद लाखों मनुष्यों को भौतिकवादी वासना की बाढ़ में डुबो देता है। यह वासना है जिसने अमीरों के बीच महान विभाजन पैदा किया है। यह वासना

ही है जिसने लाखों लोगों को कुछ लोगों का गुलाम बना दिया है, जो आर्थिक और राजनीतिक सत्ता को नियंत्रित करते हैं। गांधी ने भौतिकवाद, शोषण और युद्ध के बीच एक सीधा संबंध देखा। विकसित और विकासशील देशों के मामले में, विकसित देश दुनिया की आबादी का लगभग पांचवां हिस्सा हैं, जो दुनिया के बाकी हिस्सों की तुलना में बीस गुना अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करते हैं। और बाकी दुनिया, जनसंख्या में इतनी विशाल है कि इसे औद्योगिक देशों के जीवन स्तर तक पहुंचने के लिए कई धरती की आवश्यकता होगी। सभी अमीर और गरीब देशों के बीच अपनी बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए अधिक धन प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा होती है और इस तरह की प्रतिस्पर्धा अंततः हिंसक संघर्ष की ओर ले जाती है जिसके परिणामस्वरूप विनाशकारी युद्ध होते हैं। इसलिए गांधी जी ने हमारी जीवन शैली में सादगी और मूल्यों के मानकों में बदलाव की जोरदार वकालत की।

संदर्भ सूची

1. पाठक, अभिजीत, थॉट्स ऑन कल्चरल इनवेजन, मेनस्ट्रीम, अंक 32, सं 72, पृ.सं. 232–234
2. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 48, पृ. 159
3. पूर्वोक्त सं., अंक 48, पृ. 166
4. पूर्वोक्त सं., अंक 10, पृ. 139
5. मेहता, जे.के., ए फिलोस्फीकल इन्टरप्रिटेशन ऑफ इकोनोमिक्स, लंदनः जार्ज ऐलन – उर्विन लिमिटेड, 1962, पृ.सं. 67–68
6. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 13, पृ. 231
7. पूर्वोक्त सं., अंक 13, पृ. 23
8. तेंदुलकर, डी.जी., महात्माः लाईफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी, नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, अंक 6, 1960, पृ. 150
9. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 6, पृ. 145
10. शूमाकर, ई.एफ, फ्यूचर इज मैनेजिएबल, नई दिल्लीः इम्पेक्स इण्डिया, 1978, पृ.सं 13–30
11. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 41, पृ.सं. 511–512
12. नवजीवन, 17.03.1927
13. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 6, पृ. 327
14. हरिजन, 24.02.1946
15. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 10, पृ. 139
16. नवजीवन, 29.02.1920
17. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 13, पृ. 232
18. पूर्वोक्त सं., अंक 6, पृ. 145
19. तेंदुलकर, डी.जी., महात्माः लाईफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी, पूर्वो. सं.,पृ. 175
20. द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, अंक 36, पृ. 400